स्वतन्त्रता के लिए प्राण अर्पण करने वाली

महारानी दुर्गावती

श्री सत्यभक्त
पूर्व सम्पादक चाँद, सतयुग, प्रणवीर

युग निर्माण योजना मथुरा

स्वतंत्रता के लिये प्राण अर्पण करने वाली

रानी दुर्गावती

मानव-सभ्यता के आदिकाल से नारी का कार्यक्षेत्र घर माना गया है। वही सन्तान की जननी, पालन करने वाली और संरक्षिका है। पुरुष को वह जैसा बनाती है। वह प्राय: वैसा ही बन जाता है। इस दृष्टि से यदि उसे जाति की निर्माणकर्त्री कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। वैसे प्रकृति ने नारी को सब प्रकार की शक्तियां और प्रतिभाएं पूर्ण मात्रा में प्रदान की है, पर गृह-संचालन की जिम्मेदारी के कारण उसमें मातृत्व और पत्नीत्व के गुणों का ही विकास सर्वाधिक होता है। उसको अपने इस क्षेत्र से बाहर निकलने की आवश्यकता बहुत कम पड़ती है, पर जब आवश्यकता पड़ती है तो वह अन्य क्षेत्रों में भी ऐसे महानता के कार्य कर दिखाती है कि दुनिया चकित रह जाती है।

यद्यपि वर्तमान समय में परिस्थितियों में परिवर्तन हो जाने के कारण स्त्रियां विभिन्न प्रकार के पेशों में प्रवेश कर रही हैं, और शिक्षा, व्यवसाय, कला, उद्योग धन्धे, सार्वजनिक सेवा आदि अनेक क्षेत्रों में पर्याप्त संख्या में स्त्रियाँ दिखाई पड़ने लगती हैं। यद्यपि हमारे देश में अभी यह प्रकृति आरम्भिक दशा में है, पर विदेशों में तो करोड़ों ही स्त्रियाँ सब प्रकार के जीवन निर्वाह के पेशों में भाग ले रही हैं। यदि यह कहा जाय कि इङ्गलैण्ड, अमरीका, रूस आदि देशों की तीन चौथाई से अधिक स्त्रियाँ गृह-व्यवस्था के अतिरिक्त अर्थोपार्जन और समाज-संचालन के अन्य कार्यों में भी संलग्न है, तो इसे गलत नहीं कहा जा सकता।

पर एक क्षेत्र ऐसा अवश्य है, जिसमें हमारे देश तथा अन्य देशों की

स्त्रियों [illegible] हुत कम भाग [illegible] वह [illegible] और युद्ध का विभाग। हमारे देश में बहुत समय से ना[illegible] को कभी इ[illegible]र्य के लिये उपयुक्त माना ही नहीं गया और इसलिये उसका एक नाम 'अबला' भी रख दिया गया है, लोगों का ख्याल है कि अधिकांश में घर के भीतर रहने से स्त्रियों में दुर्धषता का वह गुण उत्पन्न ही नहीं हो पाता जो सैनिक कार्यों के लिये आवश्यक है।

पर फिर भी कोई यह नहीं कह सकता स्त्रियाँ इस क्षेत्र में कुछ कर ही नहीं सकतीं। यद्यपि सामाजिक परिस्थितियाँ तथा नियमों के कारण ऐसे अवसर बहुत कम आते हैं, पर समय-समय ऐसी वीरांगनायें उत्पन्न हुई हैं, जिन्होंने वीरता तथा युद्ध सम्बन्धी कार्यों में पुरुषों से अधिक साहस और योग्यता दिखलाई है। ऐसी एक वीर नारी तो हमारे समय ही हो चुकी है। वह थी झांसी की रानी लक्ष्मीबाई जिसने सन् १८५७ के स्वाधीनता-संग्राम के इतिहास में अपना नाम अमर कर दिया है। यद्यपि गदर में सैकड़ों ही सरदारों, राजाओं और नवाबों ने भाग लिया था, पर इतिहासकार मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हैं कि उनमें से किसी ने झाँसी की रानी से बढ़कर शौर्य-वीर्य का परिचय नहीं दिया। झाँसी के किले में और कालपी तथा ग्वालियर युद्ध-क्षेत्रों में उसने जैसा पराक्रम, युद्ध सम्बन्धी कुशलता दिखाई उस पर मुग्ध होकर अँगरेजी सेनाओं के मुख्य सेनापति और युद्ध-कला में निष्णान्त सरह्यूरोज ने अपने संस्मरणों में स्पष्ट लिखा है कि "भारतीय विद्रोही दल में अगर कोई मर्द था तो वह झाँसी की रानी ही थी।" इसीलिए हम आज भी गाँव-गाँव और गली-गली में बच्चों के मुख से भी सुनते रहते हैं—"खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।

अकबर का मान-मर्दन करने वाली दुर्गावती—

एक ऐसी ही वीरांगना आज से लगभग चार सौ वर्ष पहले भी हुई थी। उस समय भी सम्राट अकबर के दबदबे से बड़े-बड़े राजा उसके आधीन हो गये थे। जयपुर, जोधपुर, बीकानेर आदि के प्रसिद्ध क्षत्रिय नरेशों ने अकबर की आधीनता ही स्वीकार नहीं कर ली थी वे उसके सहायक भी बन गये थे। एकमात्र चित्तौड़ के महाराणा प्रतापसिंह को छोड़कर किसी राजा ने

अकबर का सामना करने का साहस नहीं किया। पर उस समय भी नारी होते हुये भी रानी दुर्गावती ने दिल्ली-सम्राट की विशाल सेना के सामने खड़े होने का साहस किया और उसे दो बार पराजित करके पीछे खदेड़ दिया।

दुर्गावती कालिञ्जर के राजा कीर्तिराय की पुत्री थी। उनकी एकमात्र सन्तान वही थी और इसलिये उन्होंने उसे पुत्र के समान ही पाला था। उसने शास्त्र चलाने की शिक्षा बचपन से ही पाई थी और तेरह-चौदह वर्ष की आयु में ही वह सिंह, तेंदुआ आदि भयङ्कर वन जन्तुओं का शिकार करने लग गई थी।

दलपतिशाह से विवाह—

दुर्गावती के विवाह की घटना कम रोमांचकारी नहीं है। दलपति-शाह एक प्रसिद्ध वीर और योग्य शासक था। उसके राज्य की सुव्यवस्था ऐसी उत्तम थी और सुरक्षा की दृष्टि से भी उसकी सेना इतनी तैयार और समस्त साधनों से युक्त थी कि मुसलमान शासकों को उस पर आक्रमण करने का कभी साहस नहीं होता था। जब दलपतिशाह ने राजकुमारी दुर्गावती के रूप और वीरता की चर्चा सुनी तो उसने उसी को अपनी पत्नी बनाने का निश्चय किया। उसने पुरोहित और एक-दो सरदारों को कालिंजर भेजा कि वे राजा कीर्ति-राय के सम्मुख इस प्रस्ताव को रखें। दुर्भाग्यवश कीर्तिराय कुछ पुराने ढर्रे के व्यक्ति थे और जात-पाँत की मर्यादा को ही सबसे बड़ी चीज मानते थे। वे मोहबा के चन्देल राजाओं के वंशज थे, जिनके दरबार में आल्हा, ऊदल जैसे भारत प्रसिद्ध वीर रहते थे। यद्यपि उनका अन्त हुए पाँच सौ वर्ष बीत चुके थे, और इस बीच में मुसलमानों ने हिन्दू धर्म और जाति की खूब दुर्गति की थी, पर कीर्तिराय उन लोगों में से थे, जो इन बातों से शिक्षा ग्रहण करने के बजाय पुरानी शान में ही डूबे हुये थे। उनको मालूम हुआ कि दलपति शाह उनकी अपेक्षा कुछ नीची श्रेणी का क्षत्री है, बस उन्होंने अन्य सब बातों की उपेक्षा करके इस प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुये स्पष्ट कह दिया कि हम अपने से निम्नश्रेणी के क्षत्रिय को अपनी पुत्री नहीं दे सकते।

जिस प्रकार दलपतिशाह दुर्गावती के रूप गुण की चर्चा सुनकर उसकी

तरफ आकर्षित हुआ था, उसी प्रकार दुर्गावती भी उसकी प्रशंसा सुनकर अपने अपने मन में उसे अपना पति बनाने का विचार करती रहती थी। पर उस समय यहाँ के क्षत्रियों की बुद्धि कुछ ऐसी विपरीत हो गई थी कि वे विवाह शादी के अवसर पर प्रायः लड़ाई-झगड़ा पैदा कर लेते थे। आल्हा-ऊदल की कथाएँ चाहे जितनी अतिशयोक्तिपूर्ण हों, पर इतना मानना पड़ेगा कि निम्नश्रेणी का होने के कारण अधिकांश राजा उनके साथ अपनी पुत्रियों का विवाह करने को राजी न होते थे और उन्होंने लड़कर ही अपनी पत्नियाँ प्राप्त करनी पड़ी थीं। इतना ही क्यों इतिहास प्रसिद्ध महाराज पृथ्वीराज भी कन्नौज के राजा जयचन्द्र की पुत्री को स्वयम्बर में से बल-पूर्वक हर कर लाये थे और इसी के प्रतिकार-स्वरूप जयचन्द्र ने विदेशी आक्रमणकारी मुहम्मद गोरी को दिल्ली पर आक्रमण करने को प्रेरित किया था। पृथ्वीराज को पराजित कर लेने के उपरान्त पठान आक्रमणकारियों ने किस प्रकार एक-एक करके भारत के समस्त राजाओं को पद दलित किया और हिन्दू-धर्म के पवित्र स्थानों की कैसी दुर्दशा की यह भी इतिहास के पढ़ने वालों से छिपा नहीं है।

सच पूछा जाय तो भारतवर्ष की पराधीनता का एक बड़ा कारण यहाँ के शासक वर्ग का यह झूँठा अहंकार और जात-पाँत का भेदभाव ही था। इससे उनकी एकता नष्ट हो गई और वे छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटकर तीन तेरह हो गये। उनकी देखा-देखी उनकी प्रजा में भी ऊँच-नीच और छोटी-बड़ी जाति का विष फैल गया और समस्त देश एक सङ्गठित शक्ति होने के बजाय छोटे-छोटे भागों में विभाजित लोगों की भीड़ की तरह हो गया। ऐसी दशा देखकर विदेशियों की लार टपकना स्वाभाविक ही था। वे धर्म, सामाजिक आचार-विचार, वेष, भाषा आदि सब दृष्टियों से एक समान थे और इस आधार पर पूर्णतः सङ्गठित थे। जब उन्होंने देखा कि भारतवर्ष जैसा समृद्ध तथा सब प्रकार के साधनों से सम्पन्न देश ऐसे असङ्गठित और आपस में फूट रखने वाले लोगों के अधिकार में है तो उन्होंने उसे बलपूर्वक छीन लिया। यदि ऐसा न होता तो कोई कारण न था कि कुछ हजार आक्रमणकारी करोड़ों की आबादी वाले देश को कुछ वर्षों में पद दलित करके यहाँ अपना शासन स्थापित कर

सकते । बिहार के कई नगरों के लिये तो इतिहासकारों ने यहाँ तक लिखा है कि बख्तियार खिलजी ने केवल अठारह सवारों को लेकर कब्जा कर लिया।

कीर्तिराय की अहमन्यतापूर्ण उत्तर को सुनकर दलपतिराय को बुरा लगा और उसने एक शक्तिशाली सेना लेकर कालिंजर पर हमला कर दिया। कीर्तिराय भी वीर था, पर दलपतिराय उसके मुकाबले में नई उम्र का जोशीला व्यक्ति था । उसने दो चार मुठभेड़ों के बाद ही, जिनमें सैकड़ों वीर मारे गये कालिंजर पर अधिकार कर लिया । फिर भी उसने पराजित कीर्तिराय से किसी प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं किया और उसकी कन्या दुर्गावती को उसी प्रकार याचना को मानो कोई बात ही न हुई हो । उसकी सज्जनता देखकर कीर्तिराय को अपनी करनी पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ और उसने विधिपूर्वक दुर्गावती का विवाह उसके साथ कर दिया ।

पुत्र का जन्म और पति का निधन—

विवाह के पश्चात् दम्पति सुख पूर्वक अपनी राजधानी गढ़मण्डला में रहने लगे और वर्ष भर बाद ही एक पुत्र का जन्म होने से उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा । पर होनहार को कौन जानता है ? दो साल बाद ही दलपतिराय बीमार पड़े और कुछ ही समय में उनके बचने की आशा न रही । दुर्गावती के शोक-संताप का ठिकाना न रहा । पति के न रहने पर उसने सती होकर उसी के साथ जाने का निश्चय कर लिया, पर दलपतिराय ने तीन वर्ष के राजकुमार के अनाथ हो जाने का भय दिखाकर उसे ऐसा कृत्य करने से सर्वथा रोक दिया । पुत्र के मुँह को देखकर दुर्गावती को भी विवश होकर इसे स्वीकार करना पड़ा ।

पति के मरने पर दुर्गावती ने अपने पुत्र वीर नारायण को गद्दी पर बैठाया और स्वयं संरक्षिका के रूप में राज्य की व्यवस्था करने लगी । उसने यह कार्य ऐसे मनोयोग, योग्यता और परिश्रम से किया कि थोड़े ही समय में वहाँ की काया पलट हो गई । प्रजा के सुखी और सन्तुष्ट होने से राज्य का वैभव भी बढ़ने लगा और दुर्गावती का नाम चारों तरफ फैल गया । उसने राजकुमार की शिक्षा का भी बहुत अच्छा प्रबन्ध किया और स्वयं उसका

हर तरह के हथियार चलाना और अपनी रक्षा करना सिखाने लगी। लोगों को आशा हो गई कि वीर नारायण अवश्य हो बड़ा होकर एक आदर्श नृपति बनेगा।

स्त्रीत्व का अभिशाप—

पर पर्दे के पीछे दुर्गावती के लिये एक नई विपत्ति सिर उठा रही थी। जैसे-जैसे उसके राज्य की समृद्धि बढ़ती जाती थी और चारों तरफ यश फैलता जाता था, वैसे ही वैसे उससे अनेक ईर्ष्या करने वाले भी पैदा होते जाते थे। अगर कोई पुरुष शासक ऐसी उन्नति करता तो सम्भवत: लोगों का ध्यान उसकी तरफ अधिक आकर्षित न होता। पर एक स्त्री का इतना आगे बढ़ना और अधिकांश पुरुष शासकों के लिये भी उदाहरण स्वरूप बन जाना उनको खटकने लगा। वास्तव में दलपतिराय का देहान्त हो जाने पर आस पास के शासकों ने तो उसके गोंडवाना राज्य का लावारिसी माल समझ लिया था कि अब हमारे ही अधिकार में आयेगा। पर जब दुर्गावती के सुप्रबन्ध और शक्ति बढ़ते जाने से उसकी स्थिति और भी मजबूत हो गई। तो उनकी आँखें खुलीं पहले तो मालवा के शासक बाज बहादुर ने गढ़ मण्डल पर हमला किया, पर दुर्गावती ने उसे ऐसी करारी हार दी कि उसे अपना सब कुछ छोड़कर जान बचाकर भागना पड़ा। उसके बाद अन्य किसी छोटे शासक की यह हिम्मत न हुई कि गढ़मण्डला की तरफ आँख उठाकर देख सके।

इस समय दिल्ली के तख्त पर अकबर विराजमान था। वह भी कम उम्र का ही था पर परिस्थितियों ने उसे उसी उम्र में महत्त्वाकांक्षी और कूट-नीतिज्ञ बना दिया था। उसने देखा कि भाई इस देश में जम कर सफलता पूर्वक शासन करना है तो यहाँ के प्रभावशाली व्यक्तियों को मिला कर ही चलना चाहिये। इसलिये उसने राजपूत राजाओं के साथ शादी विवाह का प्रस्ताव किया और दो एक स्थानों के शासक ऐसा सम्बन्ध स्थापित करके उसके पक्के हितैषी और मित्र भी बन गये। जो लोग इस तरह की चालों में न आये उनको ताकत के जोर से दबा दिया गया। उसने मालवा और बंगाल को अपने अधिकार में कर लिया था और अब गोंडवाना (मध्य प्रदेश) तथा दक्षिण

की तरफ बढ़ाने की कोशिश कर रहा था रानी दुर्गावती ने भी उसके इरादों का अनुमान कर लिया था, पर इतने बड़े सम्राट का सामना करने की शक्ति को गढ़मंडला में थी नहीं। फिर भी रानी समय को निकालती हुई चुपचाप अपनी सैनिक शक्ति को बढ़ाती रही। उसने निश्चय कर लिया कि चाहे वह एक स्त्री ही है, तो भी अकबर के किसी अन्यायपूर्ण आदेश को नहीं मानेगी और न अपनी स्वाधीनता को सहज में चली जाने देगी।

अकबर की दुरभिसंधि—

अकबर ने कड़ा (प्रयाग) के सूबेदार आसफखाँ को आदेश दे रखा था कि वह गोण्डवाना राज्य का हाल चाल लेता रहे और भीतर ही भीतर ऐसी तोड़-फोड़ करता रहे कि वह प्रदेश सहज में ही अपने अधिकार में आ जाय। आसफखाँ स्वयं ही गोण्डवाना के वैभव को देख कर ललचा रहा था कि दिल्ली से सैनिक सहायता मिल जाय तो उसका एक ही बार में सफाया कर दिया जाय। उसने अपने गुप्तचर भेजकर रानी दुर्गावती के कुछ लालची और चरित्रहीन सरदारों को भी धन और पद का लोभ दिखाकर अपनी ओर फोड़ लिया।

इतनी तैयारी की खबर पाकर अकबर युद्ध का बहाना ढूँढ़ने लगा। उसने सुन रखा था कि। गढ़मण्डला का पुराना मंत्री आधारसिंह बड़ा योग्य और स्वामिभक्त है और रानी की सफलता में उसका भी बड़ा हाथ है। बस उसने एक चाल सोची और दूत के हाथ एक पत्र दुर्गावती को भेजा कि वह मंत्री आधारसिंह को दिल्ली भेज दे, जहाँ उससे कुछ शासन सम्बन्धी कार्य कराया जायगा। अकबर का वास्तविक इरादा यह था कि अगर रानी आधार सिंह को भेजने से इनकार करेगी तो इसी बहाने उस पर चढ़ाई कर दी जायगी और यदि वह दिल्ली आ गया तो उसे हर तरह का लालच दिखाकर अपनी ओर मिला लिया जायेगा और उसी को आगे करके गोण्डवाने पर आक्रमण किया जायगा, जिससे वहाँ की प्रजा में भी फूट पड़ जाय।

इस पत्र को पाकर रानी सोच-विचार में पड़ गई, वह अपने स्वामि-

भक्त मंत्री को किसी प्रकार की विपत्ति में फंसने देना नहीं चाहती थी। पर यह भी समझती थी कि यदि वह बादशाह के आदेश को अमान्य कर देगी तो यही उसके लिये एक बहाना मिल जायगा। अन्त में उसने यही निर्णय किया कि जब घटना एक दिन होनी है तो इसी समय क्यों न हो जाय। व्यर्थ में अपने सच्चे हितैषी मन्त्री के प्राण सङ्कट में क्यों डाले जायें ? पर आधारसिंह ने स्वयं इस विचार से असहमति प्रकट की। उसने कहा कि अगर मेरे वहाँ जाने से यह बला टल जाय तो इससे अच्छा क्या होगा ? मैं कोई बच्चा या या नमक हराम तो हूं नहीं कि मुझे अकबर अपनी तरफ फोड़ ले। इसके बजाय दिल्ली जाकर मैं स्वयं उसकी योजना और चालों का पता लगाऊंगा और उनको निष्फल करने का भी प्रयत्न करूंगा। मैं आपके स्वाधीनता प्रेम का जिक्र उसके सामने अच्छी तरह कर दूंगा और समझा दूंगा कि गोंडवाना को जीतना उतना सहज नहीं है जितना उसने समझ रखा है। अगर वह किसी तरह मान जाय तो अच्छा ही है अन्यथा अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिये प्राण देना तो प्रत्येक स्वाभिमानी पुरुष का कर्तव्य ही है।

रानी ने मंत्री को रोकने की बहुत चेष्टा की, पर अन्त में उसका दृढ़ आग्रह देखकर वह चुप हो गई। दिल्ली पहुंचने पर आधारसिंह ने वहीं बात पाई जिसकी आशंका थी। अकबर से पहले तो उसी को गोण्डवाने का शासक अथवा अपना मन्त्री बनाने का लालच दिया, पर जब उस पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा तो जेलखाने में बन्द कर दिया। इसके बाद उसने आसफखाँ को शीघ्र ही गोण्डवाना पर चढ़ाई की तैयारियां करने का आदेश दिया।

यद्यपि इतिहास में अकबर को महान् कहा गया है और वास्तव में भारत में मुगल-साम्राज्य की जड़ को मजबूत जमाने वाला वही था। वह बड़ा दूरदर्शी और प्रतिभाशाली शासक था और बिना पढ़ा-लिखा होने पर भी उसने वह काम कर दिखाया जो सैंकड़ों विद्वानों के लिये भी सम्भव नहीं। उसने एक तरफ अपना राज्य चारों तरफ खूब बढ़ाया और दूसरी तरफ, प्रजा की रक्षा और सुख-सुविधा की वृद्धि करके श्रेष्ठ शासक होने की ख्याति भी प्राप्त की। वह पक्का साम्राज्यवादी था और उत्तर से दक्खिन तक तथा पूरब से पश्चिम

तक सम्पूर्ण देश को अपने अधिकार में कर लेना चाहता था। इसमें उसे बहुत कुछ सफलता भी मिली।

पर फिर भी हम रानी दुर्गावती पर चढ़ाई करने की उसकी कार्यवाही का समर्थन हम किसी प्रकार नहीं कर सकते। साम्राज्यवादियों के लिये अकारण भी दूसरे राजाओं पर चढ़ाई करना और उनका राज्य छीन लेना कोई नई बात नहीं है। सिकन्दर महान और चंगेजखाँ जैसे शासकों ने ही दूर-दूर के देशों पर आक्रमण नहीं किया हमारे भारतीय पुराणों में भी सैकड़ों चक्रवर्ती नरेशों का उल्लेख है जिन्होंने उस समय तक विदित सभी देशों पर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करली थी। इसका आशय यही निकलता है कि साम्राज्यवाद एक प्रकार का अभिशाप है, जो लाखों निर्दोष लोगों का संहार कर डालता है और लाखों का ही घरबार नष्ट करके उन्हें पथ का भिखारी बना देता है।

पर अकबर का गोंडवाना पर आक्रमण इस श्रेणी में भी नहीं आता। रानी दुर्गावती से कभी यह आशंका नहीं हो सकती थी कि वह अकबर की सल्तनत पर आक्रमण करेगी, या उससे शत्रुता ठान कर किसी प्रकार से हानि पहुँचाने का ही प्रयत्न करेगी। फिर स्त्री पर आक्रमण करना एक प्रकार से कायरता की बात समझी जाती है। दुर्गावती एक ऐसे प्रदेश में पड़ी हुई थी जो अर्द्धसभ्य मनुष्यों का निवास स्थान समझा जाता था दिल्ली, आगरा जैसे सभ्यता के केन्द्रों से बहुत दूर था। उसका कैसा भी भला या बुरा प्रभाव मुगल-साम्राज्य पर नहीं पड़ सकता था। पर इनमें से किसी बात का विचार किये बिना उसने गोण्डवाना को रौंद डालने का निश्चय कर लिया। सच है धन और राज्य की लालसा मनुष्य को न्याय-अन्याय के प्रति अन्धा बना देती है। वह यह विचार कर ही नहीं सकता कि इसके लिये मुझे लोग भला कहेंगे या बुरा? लोभ उसकी आँखों पर ऐसी पट्टी बाँध देता है कि उसे सिवाय अपनी लालसा-पूर्ति के और कोई बात दिखाई ही नहीं देती।

पर इस प्रकार का आचरण और आदर्श मनुष्य को कभी स्थायी रूप से लाभदायक नहीं हो सकता। उसका दूषित प्रभाव दूर-दूर तक पड़ता है और

सब किये धरे पर पानी फेर देता है। इस प्रकार के मामलों में प्राय: "जैसी करनी वैसी भरनी" की कहावत ही चरितार्थ होती दिखाई पड़ती है। राज्य के लोभ से ही अकबर के इकलौते बेटे जहाँगीर ने विद्रोह किया। जहाँगीर के बेटे खुर्रम ने और भी अधिक उत्पात मचाया और औरङ्गजेब ने तो राज्य पाने के लिए तीनों भाइयों का सिर काटकर बाप को भी सात वर्ष कैद रखा। कुछ लोगों ने लिखा है कि अकबर को किसी ने शाप दे दिया था कि तुम्हारे समस्त आगामी वंशज एक दूसरे के शत्रु होंगे। पर हमारी मान्यता तो यही है कि हम स्वयं जैसा आचरण करेंगे, वैसे ही संस्कार हमारी आगामी पीढ़ियों के भी बनेंगे। रानी दुर्गावती पर आक्रमण करने का कोई कारण न होते हुए भी केवल इस भावना से चढ़ दौड़ना कि हमारी शक्ति और साधनों का वह मुकाबला कर ही नहीं सकेगी तो उसे लूटा-मारा क्यों न जाय, उच्चता तथा श्रेष्ठता का प्रमाण नहीं माना जा सकता। यों तो डाकू-दल भी अपनी सङ्गठन शक्ति और अस्त्र-शस्त्रों के बल पर चाहे जिसको लूटते-मारते हैं और अपने को बड़ा बहादुर ख्याल करते हैं। पर कभी किसी डाकू का अन्त अच्छा हुआ हो यह आज तक नहीं सुना गया।

आधारसिंह को कैद करना भी नीचता का ही कार्य माना जायगा। एक भिन्न राज्य का व्यक्ति यदि आप पर भरोसा करके आ जाता है, तो उसके साथ किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार करना श्रेष्ठ पुरुषों का कार्य नहीं। वह एक प्रकार से दुर्गावती के प्रतिनिधि अथवा दूत की हैसियत से दिल्ली आया था। दूत यदि कोई कठोर बात कह देता है, तो भी उसे अवध्य माना जाता है और उसे अपने यहाँ से राजी खुशी घर जाने देना आर्य संस्कृति का एक नियम है। यवन-संस्कृति में अवश्य इससे विपरीत आचरण होता देखने में आता है। औरङ्गजेब ने शिवाजी को बहुत विश्वास दिलाकर बुलाया, पर बाद में अपने यहाँ कैद कर लिया। इसी प्रकार का उदाहरण अकबर ने भी उपस्थित किया तो इसे उसके लिये कलङ्क स्वरूप ही कहा जायगा। श्रेष्ठ व्यक्तियों का अपनी प्रतिज्ञा के विपरीत आचरण कभी न करना चाहिये।

गढ़मण्डला पर आक्रमण—

अकबर का आदेश पाकर और यह जानकर कि अब आधारसिंह भी दिल्ली में कैद है, आसफखां ने चटपट चढ़ाई की तैयारी की और गोण्डवाना राज्य में घुस गया। पर मुगल शासक फिर भी इस वीरांगना से सशंक थे और उन्होंने एक साथ दो 'मोरचों' पर आक्रमण करने की योजना बनाई। एक तरफ तो बादशाही फौज मार्ग में पड़ने वाले छोटे राजाओं तथा जागीरदारों आदि को दबाती हुई आगे बढ़ने लगी और दूसरी ओर बहुत से गुप्तचर समस्त रियासत में फैल कर प्रजा में रानी के विरुद्ध प्रचार करें और अकबर की उदारता, दान शीलता, गुण ग्राहकता की प्रशंसा लोगों को सुनावें। साथ ही कुछ विशेष गुप्तचरों को इसलिए भेजा गया कि वे गढ़मण्डला के कुछ उच्च अधिकारियों और फौजी अफसरों को धन और पद का लालच देकर उन्हें अपनी ओर मिला लें। दुर्भाग्य वश भारत में ऐसे लोगों की कमी कभी नहीं रही। सन् ११०० में मुहम्मद गोरी के हमले से लेकर सन् १७५७ तक क्लाइव द्वारा बङ्गाल के शासक सिराजुद्दौला के पतन तक जयचंद तथा मीरजाफर जैसे देशघातक भी पैदा होते रहे जिन्होंने भारतभूमि पर आक्रमण करने वालों का प्रतिरोध करने के बजाय उनको सहयोग दिया और देश को दासता के बन्धनों में डालने का पाप कमाया। मुगलों को गढ़मण्डला में भी ऐसे कई देश-द्रोही मिल गये। उनमें से बदनसिंह नाम का सरदार कुछ व्यक्तियों को लेकर अकबर से जा मिला और गढ़मण्डला के समस्त सैनिक रहस्य उसे बतला दिये। इससे अकबर वहां के शक्तिशाली और कमजोर पहलुओं को अच्छी तरह समझ गया और उसने अपनी सेना उन सभी साधनों तथा युद्ध सामग्री की व्यवस्था कर दी जिसकी वहां आवश्यकता पड़ने वाली थी।

तोपखाने का अभाव—

एक तरफ दिल्ली के साधन सम्पन्न शासकों की तरफ से गढ़मण्डला को ध्वस्त करने की इस तरह की तैयारियां हो रही थी और दूसरी ओर रानी दुर्गावती अपने पूर्वजों की भूमि की रक्षा के लिये प्राणपण संलग्न थी। उसे इस बात का बड़ा खेद था कि उसके साथियों में से ही कुछ "घर का

भेदिया" बनकर शत्रु को आगे बढ़ने में मदद पहुँचा रहे हैं, तो भी वह अपने मार्ग से च्युत नहीं हुई। वह अच्छी तरह जानती थी कि मुगल बादशाह के साधनों की तुलना में गढ़मण्डला के साधन अल्प ही हैं, तो भी उसने अपने मन में एक क्षण के लिये भी न तो निराशा आने दी और न कायरता। उसकी दृष्टि अपने कर्तव्य-पालन की तरफ थी, फिर परिणाम चाहे जो कुछ निकले।

मुगल सेना के आगे बढ़ने का समाचार पाकर रानी ने अपनी सेना को भी पूरी तरह तैयार हो जाने की आज्ञा दे दी, सिपाहियों की संख्या बढ़ाई गई और उनको कारगर हथियार दिये गये। इसके अतिरिक्त वह अपनी प्रजा में भी हर तरह से शत्रु का प्रतिरोध करने का उत्साह उत्पन्न करने लगी। वह स्वयम् और उसका पुत्र वीर नारायण जो अब सोलह वर्ष का हो चुका था, चारों तरफ घूमकर सैनिक तैयारियों का निरीक्षण करते और उत्साह पूर्ण वार्तालाप से लोगों के साहस को बढ़ाते। अभी तक समस्त युद्धों में गढ़मण्डला की सेना ने जिस प्रकार वीरता दिखाकर विजय प्राप्त की थी उसकी चर्चा करके इस बार उससे भी अधिक जोर से लड़ने की सैनिकों को प्रेरणा देते। उन्होंने अपने व्यवहार और परिश्रम से लोगों में एक नई चेतना उत्पन्न कर दी, जिससे वे युद्ध-भावना से भर कर मरने-मारने को उद्यत हो गये।

गढ़ मण्डला की सेना की सबसे बड़ी कमजोरी तोपखाने का अभाव था। मुगल लोग तोप बनाने तथा चलाने में निपुण हो चुके थे और तोपों के जोर से ही अकबर के पितामह बाबर ने दिल्ली पठान बादशाह इब्राहीम लोदी को हराकर अपनी हकूमत कायम की थी। चित्तौड़ के सुप्रसिद्ध किले पर भी तोपों और बन्दूकों से ही विजय प्राप्त की गई थी। पर अभी तक भारतीय राजा इस दिशा में ज्यादा प्रगति नहीं कर सके थे। पर्याप्त संख्या में तोपों का शीघ्र बना सकना संभव भी न था। इसलिये गढ़मण्डला की सेना को ज्यादा भरोसा अपने तीर कमान, तलवार, भाले आदि का ही था। बन्दूकों का व्यवहार भी वे करने लगे थे। और रानी दुर्गावती तो उससे अचूक निशाना लगाती थी। उसके पास घोड़े और हथियारों की भी काफी संख्या थी और अभी तक इन्हीं के द्वारा गढ़मण्डला की सेना कई शत्रुओं को हरा चुकी थी।

युद्ध का आरम्भ –

जब शत्रु सेना काफी नजदीक आ पहुँची तो रानी दुर्गावती स्वयम् घोड़े पर सवार होकर आगे बढ़ी। उस समय हाथ में नङ्गी तलवार लिये वह साक्षात् दानव दलनी दुर्गा की तरह ही दिखाई पड़ रही थी। उसने मुगलों की तोपों को व्यर्थ करने के लिये अपना मोर्चा ऐसे पहाड़ी स्थान में लगाया, जहाँ तोपों के गोले के निशाने तक पहुँच ही नहीं सकते थे, बीच में पहाड़ से टकराकर व्यर्थ हो जाते थे। इस प्रकार जब शत्रु की तोपें अपना बहुत सा गोला बारूद व्यर्थ में बर्बाद कर चुकीं, तब रानी ने मुगल सेना पर जोरों से हमला किया। उसने अपने सैनिकों में यह भावना भर दी थी कि हम धर्मयुद्ध कर रहे हैं। अपनी मातृभूमि और घरों की रक्षा करना प्रत्येक मनुष्य का पवित्र कर्तव्य है। जो इस कर्तव्य-पालन से पीछे हटता है वह 'मानव' नाम का अधिकारी नहीं और निश्चय कुल कलङ्क कहा जाने योग्य है मुगल सेना आततायी है, जो बिना कारण लूटमार के लालच से हमारे राज्य में घुस आई है। इसे मार कर खदेड़ देना ही हमारा कर्तव्य है।

अपने सैनिकों को इस प्रकार उत्साहित कर रानी ने स्वयं मुगल सेना में घुसकर ऐसी मारकाट मचाई कि उनके छक्के छूट गये। कहाँ तो वे गढ़-मडला के धन को लूट कर ले जाने का स्वप्न देख रहे थे और कहाँ यहाँ प्राणों के ही लाले पड़ गये। हजारों लाशों से पृथ्वी के पट जाने पर बादशाही सेना में भगदड़ मच गई और आसफखाँ अपने कैम्प को कई मील पीछे हटा ले गया। रानी की सेना विजय का डंका बजाती हुई अपने कैम्प में वापस आई।

युद्ध का दूसरा दौर—

इस पराजय से आसफखाँ बड़ा दुःखी हुआ। उसकी गिनती मुगल साम्राज्य के प्रसिद्ध सेनाध्यक्षों में की जाती थी और पहले वह अनेक राजाओं को जीतकर मुगल सम्राट के आधीन कर चुका था। अब एक स्त्री से हार कर वह अपना मुँह दुनिया को कैसे दिखायेगा। उसने इस बात को अपने लिये बड़ा अपमान जनक समझा और सारी बुद्धि लगाकर इसका प्रतिकार करने का

युक्ति सोचने लगा। उसने नई सैनिक सहायता आने तक किसी चाल से युद्ध को स्थगित रखने का प्रयत्न किया। बादशाही पक्ष की तरफ से एक दूत सफेद झण्डा लेकर गढ़मंडला की तरफ चला। उसके द्वारा आसफखाँ ने रानी के पास संधि का सन्देश भेजा था। पर हार जाने पर भी उसने संधि की शर्तें ऐसी रखी थीं मानो विजय उसी की हुई हो! उसने रानी को लिखा कि वीर नारायण को दिल्ली भेजा जाय और वह सम्राट अकबर की संरक्षकता में रहकर गोण्डवाना का शासन कार्य करे तो मुगल सेना का आक्रमण रोका जा सकता है।

इस बात को सुनकर रानी ने दूत को उसी क्षण लौट जाने को कहा। उसने कहा कि मैंने उसी समय मुगल सेना को राज्य के बाहर तक खदेड़ कर उसकी छावनी (कैम्प) में आग नहीं लगा दी, इसका अहसान तो तुम नहीं मानते और उल्टा मेरे पुत्र को दिल्ली दरबार में हाजिर होने की माँग करते हो। आसफखाँ रानी का उत्तर सुनकर बड़ा लज्जित हुआ और मन ही मन आगे की चाल सोचने लगा। उसने अपने अधीनस्थ अधिकारियों को बहुत लानत-मलामत की कि तुम एक औरत के सामने से पीठ दिखाकर भाग आये और फिर भी बहादुरी का दम भरते हो। सब लोगों ने मिलकर फिर दूसरी बार हमला करने का निश्चय किया उसी समय दिल्ली से कुछ नई सेना और तोपें आ पहुँची। बस आसफखाँ की हिम्मत बढ़ गई और उसने अपनी सेना को पुनः मजबूती के साथ संगठित करके हमला करने का आदेश दिया।

दूसरा आक्रमण—

इस बार आसफखाँ ने अपने सिपाहियों को तोपखाने के पीछे चलने का संकेत किया। इधर रानी दुर्गावती मुगल सिपाहियों पर ही हमला करना चाहती थी। इसलिये उसने अपनी सेना को तोपों के सामने ही चलने की आज्ञा दी। यह बड़ा कठिन अवसर था। विपक्ष के सैनिक तो तोपों की आड़ लेकर लड़ रहे थे और गढ़मंडला वालों को तोपों के अभाव में उनके गोले गोली अपनी छाती पर झेलने पड़ रहे थे। इस तरह का असमानता का युद्ध

अधिक समय तक लड़ा जा सकना कठिन होता है। उस तीर तलवारों के जमाने की बात तो जाने दीजिये, आजकल वैज्ञानिक युग में होने वाले प्रथम योरोपीय महाभारत (१६१४ से १६१८) में जब इङ्गलैण्ड ने अकस्मात् टैंक (बख्तरदार मोटर) से हमला किया तो थोड़े ही समय बाद जर्मन सेना को आत्म-समर्पण करना पड़ा। उसके बाद जर्मन सेना बराबर दबती ही चली गई और कुछ महीनों में जर्मनी ने पराजय स्वीकार कर ली। उस अवसर पर जर्मन सेना के सर्वोच्च, सेनापति हिण्डेन बर्ग ने कहा था—"हम जनरल फॉक (मित्र सेनाओं का प्रधान सेनापति) द्वारा नहीं हराये गये हैं, वरन् जनरल "टैंक" ने हमको हराया है।"

यही परिस्थिति उस समय गढ़मंडला वालों के सामने थी। वे तब तक तीर, तलवार, भाले आदि से ही लड़ते आये थे। कुछ लोग पुराने ढङ्ग की बन्दूकों का प्रयोग करना भी जान गये थे। पर इन हथियारों से तोप का मुकाबला नहीं किया जा सकता था। तोप की मार दो-चार मील तक होती ही थी और उनका गोला जहाँ गिरता था दस-पाँच आदमियों को मार ही देता था। उस समय तोपों की संख्या बहुत अधिक नहीं थी और बहुत भारी होने के कारण उनका इधर-उधर हटाया जाना भी कठिन होता था, पर उनके भयङ्कर शब्द और गोलों द्वारा किले की दीवारों को टूटते देखकर लोगों में आतंक भाव उत्पन्न हो जाता था। तो भी दुर्गावती इससे न तो भयभीत हुई और न निराशा का भाव मन में लाई। उसने अपने सैनिकों का उत्साह बढ़ाते हुये कहा कि "यद्यपि हमारे पास तोपें नहीं हैं, पर उससे भी शक्तिशाली आत्म-बल हमारे पास है हम स्वदेश की रक्षा के लिए सत्य और धर्म के अनुकूल युद्ध कर रहे हैं यह कम महत्त्व की बात नहीं है। याद रखो, सत्य की सदा विजय होती है असत्य की नहीं। ये दस-बीस तोपें मातृभूमि के मतवालों को कदापि नहीं रोक सकतीं।" यह कहकर उसने एक सवार सेना लेकर बड़ी तेजी के साथ तोपों पर धावा किया। यद्यपि इस संघर्ष में कई सौ वीर तोपों को भेंट हो गये, पर रानी ने तोपों के पास पहुँचकर गोलदाजों का सफाया कर दिया। इस प्रकार तोप खाने को निष्क्रिय हुआ देखकर आसफखाँ बड़ा

घबड़ाया। उस समय रानी थोड़े से साथियों को लेकर ही शत्रु दल में ऐसी मार-काट मचा रही थी कि बड़े-बड़े वीरों के होश उड़ गये। इतने में गढ़मण्डला की शेष सेना भी वहाँ आ पहुँची और बादशाही सेना पर ऐसी मार पड़ी कि वह प्राण बचाने के लिये फिर भाग खड़ी हुई।

तीसरा आक्रमण और गढ़मण्डला का पतन—

इस प्रकार दो आक्रमणों में रानी दुर्गावती ने शत्रु को अच्छी तरह हरा दिया। पर न मालूम किस कारण उसकी सेना ने दुश्मन की भागती हुई सेना का पीछा न किया? शायद इसका कारण क्षत्रियों का यह विरुद हो कि भागते हुए और शरणागत शत्रु को मारना धर्म के विरुद्ध है। अथवा उनकी व्यवस्था किले के समीप ही लड़ने की हो, जहाँ से आवश्यकतानुसार युद्ध सामग्री प्राप्त होती रहे और अवसर आने पर उसके भीतर पहुँच कर भी लड़ा जा सके। कुछ भी कारण रहा हो पर शत्रु को आधा कुचल कर छोड़ देने से वह प्रायः प्रतिशोध की ताक में रहता है और फिर से तैयार होकर आक्रमण कर सकता हैं। गढ़मंडला के सेनाध्यक्षों से यही भूल हुई जिसके फलस्वरूप मुगल सेना एक के बाद एक करके तीन आक्रमण कर सकी और अन्त में सुयोग मिल जाने से उसने सफलता प्राप्त कर ली। क्षत्रियों ने युद्धों में जैसी वीरता दिखाई उसकी प्रशंसा इतिहास के पन्ने-पन्ने में लिखी मिलती है, पर साथ ही अवसर के अनुकूल कार्य प्रणाली न अपना कर और केवल परम्पराओं के ही पीछे लगे रहकर उन्होंने जो बहुत बड़ी भूल की उसकी अबुद्धिमत्ता की आलोचना भी अनेक विद्वानों ने की है।

महाराज पृथ्वीराज ने प्रथम बार के आक्रमण में मुहम्मद गोरी को हरा कर पकड़ लिया था। पर बाद में कुछ लोगों की लल्लो-चप्पो में आकर मुहम्मद गोरी के क्षमा प्रार्थना करने पर उसे छोड़ दिया। परिणाम यह हुआ कि उसने फिर से अधिक तैयारी के साथ आक्रमण किया और विजय मिलने पर पृथ्वीराज को मरवा ही डाला। हमारे नीतिकारों ने भी यही कहा है कि दुष्ट शत्रु पर दया दिखाना अपना और दूसरे भी अनेकों का अहित करना है। आज

फल के व्यवहार शास्त्र का तो स्पष्ट नियम है कि दूसरों को सताने वाले दुष्ट जन पर दया करना सज्जनों को दण्ड देने के समान है। क्योंकि दुष्ट तो अपनी स्वभावगत क्रूरता और नीचता को छोड़ नहीं सकता, वह जब तक स्वतन्त्र रहेगा और उसमें शक्ति रहेगी, वह निर्दोष व्यक्तियों को सब तरह से दुःख और कष्ट ही देगा। इसलिए वर्तमान युग के एक बहुत बड़े दार्शनिक बर्नार्डशा ने एक लेख में स्पष्ट स्वभाव से ही दुष्ट और आततायी व्यक्तियों को समाज में रहने का अधिकार नहीं है। उनका अन्त उसी प्रकार कर देना चाहिये जिस प्रकार हम सर्प और भेड़िया आदि अकारण आक्रमणकारी और घात में लगे रहने वाले जीवों का कर देते हैं।

विश्वास घातियों की करतूत—

द्वितीय आक्रमण में विजय पाकर गढ़-मंडला की सेना उल्लास में आकर राग-रंग मनाने लगी और अनुशासन ढीला पड़ गया। उधर आसफखाँ दो बार हार हो जाने से बुरी तरह तिलमिला रहा था और अपने सब सलाहकारों को इकट्ठा करके आगे को नई चाल सोच रहा था। उसी अवसर पर उससे मिले हुये गढ़मंडला के विश्वासघाती कुछ व्यक्तियों ने उसके कैम्प पहुँच कर खबर दी कि इस समय गढ़मंडला की सेना राग-रंग में मस्त है, अगर इस समय आकस्मिक रूप से आक्रमण कर दिया जायगा तो वह तैयार होने का भी अवसर न पायेगी और नगर पर कब्जा किया जा सकेगा। आसफखाँ तो ऐसे मौके की ताक में ही था, उसने उन घर के भेदियों को साथ लेकर उसी समय सेना को किले पर धावा करने की आज्ञा देदी। जब यह समाचार रानी दुर्गावती को मालूम हुआ तो वह गम्भीर हो गई। घर के भेदियों का कुछ हाल तो उसे पहले से ही मालूम था, पर वे इस प्रकार प्रकट रूप से शत्रु से मिल जायेंगे इसका अनुमान वह न कर सकी थी। फिर भी युद्ध का अभ्यस्त होने के कारण वह घबड़ाने वाली न थी। उसने शीघ्रता में जितनी सेना इकट्ठी हो सकी उसे लेकर शत्रुओं को बीच में ही रोका और घमासान संग्राम आरम्भ हो गया।

इस बार सेना में जो कमजोरी दिखाई पड़ती थी उसको पूरा करने के

उद्देश्य से अपने पुत्र वीर नारायण को ही सैन्य-संचालन का भार दे दिया। उसने सोचा कि अपने राजा को इस प्रकार आगे बढ़ते देखकर सैनिकों का उत्साह बढ़ जायगा और वे अपने पराक्रम से शत्रुओं के छक्के छुड़ा देंगे। पर इसका परिणाम कुछ उलटा ही निकला। पुराने और बड़े बूढ़े सेनाध्यक्षों को एक सोलह वर्ष के किशोर के आदेशानुसार कार्य करना अपमान जनक प्रतीत हुआ और उन्होंने अपना हाथ ढीला कर दिया। परिणाम यह हुआ कि वीर नारायण के अत्यन्त शौर्य दिखलाने और अकेले सैकड़ों शत्रुओं का सफाया करने पर भी मुगल सेना आगे बढ़ती गई और किले के फाटक के समीप पहुँच गई। रानी दुर्गावती कुछ दूरी पर युद्ध करती हुई इस स्थिति को देख रही थी और आश्चर्य कर रही थी कि ऐसा क्यों हो रहा है। अन्त में एक सिपाही ने संकेत द्वारा उसे वास्तविक कारण बतलाया। यह सुनकर वह बहुत ही दुःखी हो गई। उसने तो अपने इकलौते अल्प-वयस्क पुत्र को इसी लिये सबसे आगे लड़ने को भेजा था कि लोग उसके त्याग और बलिदान के भाव को समझें और उन्हें पूरी शक्ति से जूझने की प्रेरणा मिले। पर मनुष्य के हीन अहंकार तथा ईर्ष्या के वृत्ति ने उसे कुछ और ही रूप दे दिया। मुगलों की नई सेना और युद्ध सामग्री के जोर से गढ़मंडला उस दिन नहीं तो दूसरे दिन शत्रुओं के हस्तगत हो ही जाता, क्योंकि सेना में अव्यवस्था पैदा हो गई थी, पर इन पुराने सरदारों ने ऐसे कठिन अवसर पर झूँठी शान के पीछे जो अकर्मण्यता दिखाई उसके लिये वे सदानिन्दा के पात्र बने रहे। उससे भीषण संघर्ष करना उनको भी पड़ा, पर जहाँ रानी दुर्गावती तथा वीर नारायण का नाम आज चार सौ वर्ष बीत जाने पर भी आदर के साथ लिया जाता है, उनको देश का गौरव बढ़ाने वाला माना जाता है, वहाँ उन हीन मनोवृत्ति के सरदारों को घृणा के साथ ही याद किया जाता है। क्या यह उनका बड़ा दुर्भाग्य नहीं है।

इसी समय रानी ने वीर नारायण को पचासों शत्रु सैनिकों से अकेले लड़ते-लड़ते घोड़े से गिरते देखा। साथ ही समाचार आया कि तोपों की मार से किले की दीवार एक स्थान पर टूट गई है। उसने समझ लिया कि बस अब अन्त आ गया। वीर नारायण के वीर गति पाने से अब उसे जीवन से तनिक

भी मोह न रह गया था। वह चुने हुये तीन सौ सवारों को लेकर मुगल सेना पर टूट पड़ी। उसने सैकड़ों शत्रुओं को यमलोक पहुँचाया पर अचानक एक तीर आकर उसकी आँख में लगा। उसने उसे अपने हाथ से बाहर खींच लिया। इतने में दूसरा तीर गर्दन में लगा। उससे असह्य वेदना होने लगी। उस समय रानी ने आधारसिंह को सामने देख कर कहा "मैं अब रक्त निकलने से अशक्त होती जा रही हूं। मैं कभी नहीं चाहती कि शत्रु मुझे जीवित अवस्था में छू सकें। इसलिये तुम तलवार से मेरी जीवन लीला समाप्त कर दो।" पर आधार सिंह इस बात को सुनकर कांप उठा और उसने भरे हुए कण्ठ से कहा—मैं असमर्थ हूँ मेरा हाथ आप पर नहीं उठ सकता। रानी जोश में आ गई और मरते मरते उठकर बैठ गई और अपनी कटार जोर से अपनी छाती में घुसेड़ ली। दूसरे ही क्षण उसकी निर्जीव लाश भूमि पर पड़ी दिखाई दी।

इसके पश्चात् मुगल सेना को रोकने वाला कोई न रहा। उसने नगर में घुस कर बहुत मार-काट मचाई तथा गढ़-मंडला के खजाने तथा महलों की सम्पत्ति को लूट लिया। कहा जाता है वहां पर आसफखां को बहुत अधिक सोना, चांदी, जवाहरात आदि मिले। उनका अधिकांश उसने स्वयं रख लिया केवल पन्द्रह हाथियों पर लूट कर थोड़ा सा भाग लदवा कर दिल्ली भेज दिया। गोंडवाना के गौरव का दीपक सदा के लिये बुझ गया और आज वह एक उजाड़ नगर के रूप में ही शेष है।

दुर्गावती मर कर भी अमर है—

दुर्गावती ने जिस प्रकार मातृभूमि की रक्षा के लिए विदेशी आक्रमणकारियों से युद्ध करके वीरगति पाई, उस तरह की मृत्यु शोक नहीं गौरव की बात मानी जाती है। अपने लाभ के लिये तो सभी प्रयत्न करते और सङ्कट उठाते हैं, पर जो न्याय की खातिर अपनी प्रत्यक्ष हानि देखकर भी संघर्ष करते हैं उनकी गिनती महान पुरुषों में होती है। दुर्गावती अगर चाहती तो अकबर की आधीनता स्वीकार करके आजन्म सुख-पूर्वक रह सकती थी, पर ऐसा करने में उसे अपना और देश का अपमान जान पड़ा। हम जयपुर के राजा

मानसिंह आदि को 'गद्दार' ही समझते हैं, क्योंकि उन्होंने अकबर के राज्य को फैलाने और जमाने में ही अपनी समस्त वीरता और युद्ध कौशल को खर्च किया इसका अर्थ यह है कि उन्होंने हिन्दुओं के प्रभुत्व का अन्त करके विदेशियों की जड़ जमाने का वह कार्य किया जिसे कभी आदरणीय नहीं कहा जा सकता।

इसके विपरीत भारत का बच्चा-बच्चा मेवाड़ के महाराणा प्रताप सिंह का यशगान करता है क्योंकि उन्होंने हर प्रकार के कष्ट सहन करके भी अकबर के साथ वर्षों तक संघर्ष किया और देश की स्वाधीनता की रक्षा के लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। हम शिवाजी को भी राष्ट्र रक्षक की पदवी देते हैं क्योंकि उन्होंने औरङ्गजेब जैसे निष्ठुर और हिन्दुत्व के प्रबल विरोधी बादशाह का सामना किया और अल्प-साधन युक्त होते हुए भी जाति और धर्म के झन्डे को झुकने नहीं दिया। हम गुरु गोविन्द सिंह को देश का उद्धारक इसीलिये मानते हैं कि उन्होंने चारों पुत्रों का बलिदान स्वाधीनता की वेदी पर कर दिया और मुगल बादशाह को सहयोग देना स्वीकार नहीं किया। यही कारण है कि सैकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी इन सब वीरों के चरित्र पढ़े जाते हैं, उनकी जयन्तियाँ मनाई जाती हैं और आगामी पीढ़ियों को उनसे प्रेरणा लेने को कहा जाता है। उनकी गणना महापुरुषों में की जाती है। इसके विपरीत मानसिंह जयसिंह आदि कितने भी सफल और सम्पन्न क्यों न बन गये उनको देश और जाति का विरोधी ही घोषित किया जाता है। चाहे उस समय वे बहुत बड़े पदवी धारी कहे जाते थे और उन्होंने इतना धन भी कमाया जो पीढ़ियों तक काम देता रहा, पर उनकी प्रशंसा में आज तक एक शब्द भी किसी के मुँह से सुनने में न आया।

रानी दुर्गावती भी इस दृष्टि से भारतीयता की रक्षक और स्वाधीनता के लिये बलिदान करने वाली मानी जाती है। यद्यपि परिस्थितियों के कारण विदेशी शासकों के साथ उसका संघर्ष अल्पकालीन ही रहा, महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी की तरह वह वन, जङ्गल और पर्वतों में घुसकर वर्षों तक संघर्ष न कर सकी, पर भारतीय स्त्रियों की तत्कालीन और आज की भी

स्थिति को देखते हुये उसने जो कुछ किया वह उसे प्रथम श्रेणी के राष्ट्रीय वीरों की पंक्ति में बिठाने के लिये पर्याप्त हैं। जहाँ स्त्रियों को घर से बाहर निकलने का भी अधिकार नहीं है, जहाँ उनका सार्वजनिक जीवन में भाग लेना आलोचना का विषय बन जाता है, जहाँ थोड़ी-सी स्वतन्त्रता का रहन-सहन देखते ही लोग उनके चरित्र पर शङ्का करने लगते हैं, वहाँ दुर्गावती ने जो कुछ किया उसकी सौ मुखों से प्रशंसा की जाय तो भी अनुचित नहीं है।

यह भारतीय पुरुषों की बहुत बड़ी त्रुटि है कि उन्होंने स्त्रियों को ऐसे बन्धनों से जकड़ दिया कि वे देश और जाति की प्रगति के लिए कोई महत्वपूर्ण कार्य कर सकने के योग्य ही नहीं रही। इससे हमारी आधी शक्ति ही बेकार न हो गई, वरन् अपने अज्ञान तथा जड़ता के कारण वह हमारे अग्रसर होने में भी पैरों की बेड़ी के समान सिद्ध होने लगी। कौन नहीं जानता कि हमारे पिछले पचास वर्ष के स्वाधीनता आन्दोलन में लाखों व्यक्ति इच्छा रहने पर भी स्त्री और सन्तान के बन्धनों के कारण भाग न ले सके। अगर स्त्रियाँ सुयोग और व्यवहार कुशल होतीं तो वे ऐसे अवसर घर का भार स्वयं संभाल कर पुरुषों का देशोद्धार के कार्य के लिए छुट्टी दे सकती थीं। पर जब हमने स्वयं ही उनको 'पिंजरे का पंछी" बना रखा है तो हम उनकी शिकायत भी किस मुँह से करें। ऐसी दशा में तो जो दस पाँच देश तथा समाज की सेविकाएँ अपने प्रयत्न और साहस से निकल आईं उन्हीं को गनीमत माना जायगा।

वीरांगनाओं में दुर्गावती का स्थान सर्वोच्च है—

यह सब कुछ होने पर भी दुर्गावती ने युद्ध-क्षेत्र में जो वीरता और रण कौशल दिखलाया वह अद्वितीय ही है। हमको भारत तथा संसार की अन्य वीरांगनाओं का इतिहास भी मालूम है, पर बहुत कुछ खोज करने पर भी ऐसी दूसरी नारी दिखाई नहीं पड़ी जिसने उसके समान वर्षों तक सुशासन करके सेना को इतना दृढ़ बनाया हो कि वह अकबर जैसे प्रसिद्ध सम्राट की शक्तिशाली फौज को दो बार पराजित कर सके। साथ ही अन्य किसी स्त्री ने युद्ध के खुले मैदान में उसके समान अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग करके प्रसिद्ध वीरों के

छक्के छुड़ा देने का कठिन कार्य भी करके नहीं दिखाया। इतिहास में वीरावाई, कर्माबाई आदि दो चार क्षत्राणियों के नाम ही पढ़ने में आते हैं जिन्होंने कोई आकस्मिक अवसर उपस्थित हो जाने पर युद्ध-क्षेत्र में प्रत्यक्ष युद्ध करके शत्रु पर विजय प्राप्त की हो। पर उनके सम्बन्ध में इतनी कम बातें ज्ञात हो सकी हैं कि उनके आधार पर उनका विशेष वर्णन नहीं किया जा सकता है। एक मात्र झांसी वाली रानी लक्ष्मीबाई ही गत सैकड़ों वर्षों के भीतर ऐसी निकली हैं। जिसने स्त्रियों के "अबला" कहे जाने वाले "कलंक" को मिटाने के लिये एक प्रशंसा के योग्य उदाहरण सामने रखा है। देश की स्वाधीनता संग्राम में एक महत्वपूर्ण पार्ट अदा करके अपनी आहुति डाल देने की दृष्टि से इन "दुर्गा" "लक्ष्मी" में कोई अन्तर नहीं पर शासन-संचालन में दुर्गावती ने जो जौहर दिखाया वह बेमिसाल है।

संसार के पुराने इतिहास में किसी देश की महिला ने युद्ध में ऐसी वीरता और कौशल दिखाया हो इसका कोई प्रसिद्ध उदाहरण पढ़ने में नहीं आया। हाँ, आधुनिक समय में विभिन्न देशों में ऐसी कितनी ही महिलायें सामने आई हैं जिन्होंने महत्वपूर्ण कार्य करके स्वाधीनता के लिये बलिदान दिया है। पर चूंकि इस समय युद्ध-क्षेत्र का रूप बदल गया है इसलिये तीर तलवार या बन्दूक लेकर सैनिकों के दल से जूझने वाली महिला में तो नहीं मिल सकतीं पर जिन्होंने स्वाधीनता प्राप्त करने के लिये शत्रुओं से संघर्ष किया है, उनके प्रहार सहन किये हैं और स्वयं प्रहार किया है, ऐसी वीराङ्गनायें पर्याप्त संख्या में मिलती हैं।

ऐसी देशभक्त महिलाओं की सबसे अधिक संख्या रूस में पाई जाती है। वहाँ पर सत्तर-अस्सी वर्ष पहले जार का ऐसा अत्याचारी शासन कायम था कि करोड़ों प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही थी। किसान, मजदूर, दुकानदार, छोटे सरकारी कर्मचारी सबकी हालत खराब थी और सब कष्ट पा रहे थे। प्रत्येक विभाग में भ्रष्टाचार का बोल बाला था जिससे प्रजा को घोर गरीबी में निर्वाह करना पड़ता था। यह दशा देखकर अनेक स्वाभिमानी युवक, युवतियों को जोश आया और उन्होंने इस अन्याय का खात्मा करने की प्रतिज्ञा की। पर

उनके पास इतने साधन तो थे नहीं कि फौज खड़ी करके अत्याचारियों पर आक्रमण कर देते। इसलिये वे बम और पिस्तौल लेकर गुप्त रूप से अत्याचारी अधिकारियों और स्वयम् जार पर भी हमला करते थे। इनमें से सोफिया नाम की युवती ने जार पर ऐसा जोरदार आक्रमण किया वह भाग्यवश ही बच गया। जब सोफिया को गिरफ्तार किया गया तो उसको अपने दल का भेद खोलने के लिए अमानुषिक यातनाएं दी गईं, पर वह अन्त तक अटल बनी रही और प्रसन्नता पूर्वक फांसी पर चढ़ गई। उसी की तरह के वर्नर आदि और भी बहुसंख्यक युवतियों ने क्रांतिकारी कार्यों में भाग लिया और परिणाम स्वरूप वर्षों तक रूस के "काले पानी" साइबेरिया में, जहाँ सैकड़ों मील तक बर्फ बिछी रहती हैं, घोर कष्ट सहन किये।

द्वितीय महा समर (सन् १९३९ से १९४५) के अवसर पर भी जब जर्मन सेना ने अकस्मात् आक्रमण करके रूस के एक बड़े भाग पर कब्जा कर लिया और वहाँ के स्त्री-पुरुषों को घोर कष्ट दिये तब भी वहाँ अनेक स्त्रियाँ ऐसी निकलीं जिन्होंने जर्मन सेना की पर्वाह न करके उनके विरुद्ध संघर्ष किया। इनमें "जोया" की अठारह वर्ष की लड़की का नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध है। उसके विषय में एक लेखक ने लिखा है—

"रूसी इतिहास की बीसवीं शताब्दी के चित्र पट पर "जोया" एक जीवित केन्द्र विन्दु है, जिसने अपने देश की अन्धकार पूर्ण और भयावह घड़ी में मर्दानगी को चुनौती देकर शत्रु के नृशंस प्रहार अपनी सुकुमार शरीर पर सहे और आजादी के लिये हँसते-हँसते प्राण विसर्जन कर दिये। तभी से जोया के जीवन-मृत्यु की अमर गाथा विश्व भर के लिये नवीन चेतना और शक्ति का उद्गम बन गई है। विभिन्न रूसी पत्रों में सैकड़ों लेख और निबन्ध इस अठारह वर्षीय किशोरी कन्या की बलिदान-कथा पर निकलते हैं। सार्वजनिक संग्रहालय (म्यूजियम)के लिये चित्रकार उसके चित्र बना रहे हैं। रूस का एक प्रसिद्ध नाटककार उस पर एक नाटक लिख रहा है। एक कवि ने लम्बी कविता लिखी है। दो प्रसिद्ध मूर्तिकार उसकी संगमरमर की मूर्ति बना रहे है और प्रख्यात् फिल्म निर्माता उसके जीवन की कल्पित फिल्म बनाने में व्यस्त

है। नगर, सड़कें, स्कूल, कारखाने, म्यूजियम उसके नाम पर खोले जा रहे हैं। रूसी लड़कियाँ जोया के दृष्टान्त से जीवन-पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा प्राप्त करती हैं।"

एक सामान्य ग्रामीण लड़की की इतनी महिमा इसीलिये है कि उसने प्राणों की तनिक भी चिन्ता किये बिना अपने देश के शत्रुओं को नष्ट करने का हर तरह से प्रयत्न किया। वह पहले तो गुरिल्ला फौज में शामिल होकर जर्मन सेना को तरह तरह से हानि पहुँचाने की कार्यवाहियाँ करती रही। फिर एक दिन जर्मनी की छावनी के पास जाकर उसमें आग लगाकर चली आई। पर जब उसे मालूम हुआ कि उसकी लगाई आग से बहुत थोड़ा नुकसान हुआ तो वह दूसरे दिन फिर आग लगाने चली। उसके साथियों ने उसे रोका भी आज मत जाओ क्योंकि जर्मन सिपाही सतर्क होंगे, पर वह अपनी प्रतिज्ञा को पूरी करने को चल ही दी और आग लगाते हुए पकड़ ली गई। जर्मनों ने उसे पहले तो गुरिल्ला दल का भेद पूछने के लिये कोड़ों से खूब मारा तथा अन्य यातनायें दीं और फिर फाँसी पर चढ़ा दिया गया।

अल्जीरियाँ की तीन "जमीला" नाम की युवतियाँ भी बहुत प्रसिद्ध हैं। वहाँ के देशभक्तों ने फ्रांस की आधीनता से छुटकारा पाने के लिये जो मुक्ति-संग्राम आरम्भ किया था उसमें ये अग्रगण्य थीं। ये एक के बाद एक आन्दोलन की नेतृी बनीं और ऐसे साहस से फ्रांस की शासन सत्ता पर प्रहार किया कि सारा संसार चकित हो गया। इन तीनों को ही फ्रांस के जेलखानों में बन्द करके यातनाएं दी गईं पर वे टस से मस न हुईं। अन्त में फ्रांस की सरकार को झुकना पड़ा और अल्जीरिया को स्वतन्त्रता देनी पड़ी।

हमारे भारत के क्रांतिकारी दल में एक ऐसे ही कुमारी कल्पना हुई थी जिसने देश की स्वाधीनता संग्राम की सैनिक बनकर भरी सभा में बङ्गाल के गवर्नर पर गोली चलाई थी। संयोगवश वे बच गये, पर कल्पना को उस अपराध में दण्डित होकर अनेक वर्ष तक जेलखाने की भयानक कोठरी में बन्द रहना पड़ता था।

नारी का दृष्टिकोण बदलने की आवश्यकता—

इस प्रकार संसार में समय-समय पर कुछ महिलायें ऐसी सामने आती रही हैं, जिन्होंने देश और जाति की रक्षा के लिए पुरुषों की तरह ही सशस्त्र संघर्ष किया है और उसकी सफलता के लिए हर तरह की यातनायें सहन की हैं, प्राणों तक का अर्पण कर दिया है। पर यह कहना पड़ेगा कि इस प्रकार की साहसी और त्याग करने वाली नारियाँ अपवाद स्वरूप ही मानी जा सकती हैं। भारतीय क्रांतिकारी दल के इतिहास में ही जहाँ भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, राम प्रसाद 'बिस्मिल' खुदीराम, शचीन्द्र सान्याल, सावरकर आदि पचासों एक से एक बढ़कर शहीदों और वीरों के चरित्र चमक रहे हैं, वहाँ उसमें भाग लेने वाली दो-चार स्त्रियों का ठीक परिचय भी थोड़े ही लोग जानते हैं। यह बात नहीं कि नारियों में त्याग और बलिदान की भावनाओं का अभाव है। ये गुण उनमें पुरुषों की अपेक्षा अधिक ही पाये जाते हैं। पर आज तक ये गुण प्रायः निजी छोटे से परिवार तक ही सीमित रह जाते हैं। स्त्रियों को जन्म से मृत्यु तक ऐसे सङ्कीर्ण वातावरण में रखा जाता है और ऐसी ही शिक्षा-दीक्षा दी जाती है जिसमे वे अपने से सम्बन्धित कुछ व्यक्तियों के सिवाय दूरवर्ती अथवा अपरिचित लोगों के प्रति अपनेपन की भावना रख ही नहीं सकती।

हम यह भी नहीं कहते कि नारी घर के क्षेत्र की उपेक्षा करके केवल सार्वजनिक क्षेत्र में तल्लीन हो जाय। वर्तमान समय में विदेशों की बहुसंख्यक और भारत की भी कुछ नारियों ने शिक्षा का आशय यह समझ लिया है कि घर के काम धंधे को त्याग कर फैशनेबिल गोष्ठियों और समारोहों में मनोरंजन किया जाय और वाहवाही हासिल की जाय। हमारी सम्मति में यह कोई प्रशंसनीय बात नहीं। यह तो संभव है कि पिछले दस-पाँच हजार वर्षों में जिस प्रकार अराजक-अवस्था से राज-तन्त्र, राजतन्त्र से प्रजातन्त्र स्थापित हो गया और अब अनेक बड़े-बड़े देशों में साम्यवादी समाज की स्थापना हो रही है उसी प्रकार नया युग बदलने पर किसी ऐसे समाज का निर्माण हो जिसमें स्त्री-पुरुष के भेद के आधार पर कार्य विभाजन की परम्परा उठ जाय

और दोनों सुविधानुसार प्रत्येक काम में हिस्सा बंटाने लगें पर यह एक ऐसी दूरवर्ती कल्पना है जिस पर अभी से वाद विवाद करना निरर्थक है। अभी तो हम समाज के हित की दृष्टि से इतना ही कह सकते हैं कि स्त्रियों के दृष्टिकोण को परिवार हित से बढ़ा कर समाज हित के क्षेत्र तक अवश्य विस्तृत करना चाहिये। गांधी जी के आन्दोलन के प्रभाव से सरोजिनी नाइडू, सरला देवी चौधरानी, अवन्तिका बाई गोखले, जानकी बाई बजाज, राजकुमारी अमृत कौर, विजय लक्ष्मी पंडित आदि जो थोड़ी सी स्त्रियाँ सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने लग गईं तो उससे यहाँ के सामाजिक वातावरण में अद्भुत परिवर्तन हो गया। उनके उदाहरण से प्रेरणा प्राप्त करके लाखों अन्य नारियों के भी बन्धन ढीले हुए और समाज-सेवा के क्षेत्र में कोई उपयोगी कार्य करने लगीं।

रानी दुर्गावती का आदर्श चरित्र भी नारियों को यह शिक्षा देता है कि घर और परिवार की व्यवस्था संलग्न रहते हुए भी उनको कूप मण्डूक बनकर नहीं रहना चाहिये। उन्हें इतनी शिक्षा और योग्यता तो प्राप्त कर ही लेनी चाहिये कि किसी प्रकार की विपरीत परिस्थिति सम्मुख आ जाने पर स्वयम् उसका प्रतिकार कर सकें। हमें खेद से कहना पड़ता है कि वर्तमान समय में अधिकांश साधन सम्पन्न घरों की स्त्रियाँ इस दृष्टि से अपंग-सी बनी रहती है। जब तक समय अनुकूल रहता है वे मौज-शौक, फैशन, विलास में समय बिताती है, घर का काम नौकरों से करा लेती हैं, पर जब समय प्रतिकूल हो जाता है तो सिवाय रोने-झींकने और भाग्य तथा भगवान को दोष देने के अतिरिक्त वे कुछ नहीं कर सकतीं।

श्री महादेव गोविन्द रानाडे ने एक बार एक ऐसी फारसी स्त्री का हाल बतलाया था जिसका पति एक बड़ा व्यापारी था। पर पति की मृत्यु के उपरान्त घर का वैभव शीघ्र ही समाप्त हो गया और उसका लड़का सामान्य नौकरी करके घर का काम चलाने लगा। तब घर के खान-पान और रहन-सहन में बहुत अन्तर पड़ गया और वह सदैव इसी के लिये दुःखी होकर प्रलाप किया करती। एक बार श्रीरानाडे से बात होने पर उसने कहा कि मेरा लड़का सामान्य हालत में ही बड़ा हुआ है, इसलिये वह मामूली खाना

पाकर राजी हो जाता है। पर मेरी पुराने समय की बिगड़ी हुई जीभ तो भोजन में दस तरह की चीज हुये बिना सन्तुष्ट ही नहीं होती।" यह स्त्री न तो उद्योग और सुव्यवस्था द्वारा घर की सम्पति की रक्षा ही कर सकी और न इतना संयम कर सकी कि जिह्वा के स्वाद की पर्वाह न करे। ऐसी स्त्रियों को अपना जीवन भार मालूम पड़े तो इसमें क्या आश्चर्य है।

रानी दुर्गावती एक राजा की पुत्री थी, जिसे शौक-मौज और सुख साधनों की कोई कमी हो ही नहीं सकती थी विवाह के बाद वह और भी बड़े राजा की पत्नी बनी जहाँ सकड़ों दास-दासी उसकी आज्ञा की राह देखा करते थे। पर यह सब होने पर भी उसने अपने भीतर वह शक्ति और साहस उत्पन्न किया कि बड़े-बड़े शासक और सेनाध्यक्ष उससे हार मान गये। इससे सिद्ध होता है कि उतना वैभव और पद पा लेने पर भी उसने अपने उद्देश्य को नहीं भुलाया था, और अपना रहन-सहन तथा खान-पान वैसा ही रखा था, जिससे वह विलासी और निर्बल चित्त की न हो जाय। इसी श्रेणी के नर-नारी संसार में कोई महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं। वे सम्पत्ति और विपत्ति में अपना सन्तुलन कायम रखते हैं और कर्तव्य पालन मे पीछे कदम नहीं हटाते। सच्चे मनुष्य का यही धर्म और यही कर्तव्य होना चाहिये।

भारतीय समाज में सुधार की आवश्यकता—

पर यह स्थिति तब तक नहीं आ सकती जब तक समाज के कर्णधार और मार्ग दर्शक अपना दृष्टिकोण सही न कर लें। यद्यपि वैदिक काल में हमको नारी की पराधीनता अथवा उसका दर्जा निम्न होने का कोई संकेत नहीं मिलता। उल्टा कई महिलायें ऋग्वेद की 'ऋषि' मानी गई हैं और विवाह सम्बन्धी सूक्तों में नारी की सत्ता का बहुत प्रशंसनीय शब्दों में वर्णन किया गया है। वैदिक काल में वे स्वतन्त्रता पूर्वक समस्त-कर्म करती थीं और यज्ञों में भी भाग लेती थीं। वे घर की पूरी मालकिन और संचालक मानी जाती थीं। विदुषी स्त्रियाँ बड़े सम्मान के साथ सब जगह आदरणीय स्थान पाती थीं। उनमें से अनेक "ब्रह्मवादिनी" भी होती थीं, जिसका आशय यह था कि वे अविवाहित रहकर अपना समस्त जीवन ज्ञान और अध्यात्म की साधना में व्यतीत

किया करती थीं, युद्ध क्षेत्र में जाकर वीरता प्रदर्शित करने के भी कुछ स्त्रियों के उदाहरण मिलते हैं जैसे दशरथ के साथ कैकेई ने युद्ध में भाग लिया था। इस प्रकार भारतीय सभ्यता के उस स्वर्णकाल में स्त्रियों पर कोई प्रतिबन्ध न था और मुख्यतया गृह व्यवस्था में लगे रहने पर भी वे आवश्यकतानुसार सार्वजनिक जीवन मे भी सहयोग देती रहती थीं।

पर मध्यकाल में जब हमारे देश पर विदेशियों के आक्रमण होने लगे, अथवा बहुसंख्यक व्यक्ति किन्हीं कारणों से अपना देश छोड़कर यहाँ आ बसे तो उनके संसर्ग से भारतीय सामाजिक स्थिति में भी अन्तर पड़ने लगा और स्त्रियों के अधिकार सीमित किये जाने लगे। खासकर मुसलमानों के आगमन के बाद तो यहां के शास्त्र-ग्रन्थों में "न स्त्री स्वातन्त्रय मर्हति" "स्त्री शुद्रोन धीयताम" "अष्टवर्षा भवेद्" गोरी" आदि ऐसे अनेक वाक्य सम्मिलित कर दिये गये जिनके कारण स्त्रियों की स्वतन्त्रता बहुत कुछ अपहरण कर ली गई और उनको घर के भीतर ही बन्द रहकर एक कैदी जैसा परतंत्र जीवन व्यतीत करने को बाध्य किया गया। तभी से भारतीय समाज का वास्तविक पतन आरम्भ हुआ और तरह-तरह की हानिकारक रूढ़ियाँ और परम्परायें प्रचलित होने लगीं। उदाहरण के लिये प्राचीन समय में इस देश में पर्दे का कहीं नाम न था, पर मुसलमानों के अनुकरण से यहाँ के बड़े लोगों में वह फैल गया और फिर देखा-देखी मध्यम-वर्ग में भी प्रचलित हो गया। इसी प्रकार बाल-विवाह भी यहाँ कभी नहीं होता था, बड़ी आयु में सोच-समझकर विवाह करने की ही प्रणाली अधिकांश में प्रचलित थी हम प्राचीन ग्रन्थों में जिन स्वयम्बरों के वर्णन पढ़ते हैं वे दस-बारह वर्ष की अवस्था में कभी संभव न थे। तभी रामायण में यह लिखा गया था कि सीता स्वयम्बर के समय उसकी आयु अठारह वर्ष की थी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि हमारे समाज में प्रचलित अधिकांश सामाजिक कुरीतियाँ या तो संसर्ग से उत्पन्न हुई हैं या किसी सामाजिक परिस्थिति के कारण प्रचलित हो गई हैं। उनकी जड़ में कोई ऐसा ठोस धार्मिक सिद्धान्त या कारण नहीं है जिसके आधार पर उनमें सुधार करना या उनको त्याग देना

"पाप" समझा जाय। सामाजिक प्रथायें सदा देश काल के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं। जो लोग या जातियाँ उनको शाश्वत या अमिट समझकर अपने को उनमें जकड़ लेते है वे स्वयम् भी जड़ हो जाते हैं और उनकी प्रगति का क्रम रुक जाता है। भारतीय नारी की वर्तमान दशा इस तथ्य का एक जीता जागता प्रमाण है। जबसे वह बन्धन ग्रस्त हो गई, उसे केवल पति की एक "सम्पति" या गृह कार्य करने वाली "दासी" की तरह समझ लिया गया तब से भारतीय समाज में तरह-तरह के दोष बढ़ने लग गये और वह उन्नति के बजाय पतन की तरफ अग्रसर होने लग गया। क्योंकि सन्तान का पालन तथा उसके चरित्र का गठन अधिकांश में माता के ऊपर ही निर्भर होता है। यदि माता ही अशिक्षित, कुसंस्काराच्छन्न और शक्तिहीन हुई तो सन्तान के सुयोग्य, सद्‌गुणी और शक्तिशाली होने की आशा कैसे की जा सकती है? महात्मा गान्धी ने ठीक ही कहा है—

"स्त्री अबला नहीं है बल्कि वह अपनी शक्ति को पहचाने तो पुरुष से भी अधिक सबला है। वह माता के रूप में जिस प्रकार बालक को गढ़ती है और पत्नी होकर पति को जिस तरह चलाती है, बहुत करके पुरुष वैसे ही बनते हैं। स्त्री वास्तव में साक्षात त्याग की मूर्ति है। जब कोई स्त्री किसी काम में जी जान से लग जाती है तो वह पहाड़ को भी हिला देती है।"

वास्तव में भारतवर्ष का पतन तभी से आरम्भ हुआ जब से स्त्रियां अपनी शक्ति का पहचानना भूल गईं और अपने जीवन का उद्देश्य केवल चौका-चूल्हा और सन्तानोत्पदान ही समझने लग गईं। जब कोई व्यक्ति पाते किसी परिस्थिति में सैकड़ों वर्ष तक रह लेता हैं और उसका अभ्यस्त हो जाता है, तो उसे वही स्वाभाविक और सुख कर जान पड़ने लगती है। यही दशा इस समय अधिकांश में भारतीय स्त्रियों की हो गई है। उसने अपने को भगवान की तरफ से परतंत्र, असहाय और अबला समझ लिया है और वह ख्याल करती है कि उसका कल्याण इसी में है कि वह घर के भीतर बैठी रहे और अपने हाव-भाव और सेवा से पति को प्रसन्न रखकर सुख-सामग्री प्राप्त करती रहे। यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो यह स्थिति और मनोवृत्ति न

तो सराहनीय है और न कल्याणकारी। स्त्री को भी अपने लिये समाज का एक उपयोगी अङ्ग—एक कर्मठ सदस्य समझना चाहिये। उसे कोई भी कार्य केवल निजी स्वार्थ अथवा परिवार के लाभ की ही दृष्टि से ही नहीं करना चाहिये, वरन् इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि वह समाज की दृष्टि से भी उपयोगी है या नहीं। जिस दिन वह इस तथ्य को हृदयङ्गम कर लेगी और संकीर्ण दायरे से निकल कर समस्त समाज के हित की दृष्टि से कार्य करने लगेगी, उस दिन समाज की काया पलट होने में देर न लगेगी। क्योंकि स्त्री में शक्ति का अभाव नहीं है। वरन् हमारे शास्त्रकारों ने तो उसे "शक्ति" का अवतार ही माना है। विदेशी विचारकों ने ऐसा ही बतलाया है। कार्लटन नामक विद्वान् ने लिखा है—

"कौन-सी ऐसी ऊँचाई है जहाँ स्त्री चढ़ नहीं सकती? कौन-सा ऐसा स्थान है जहाँ वह पहुँच नहीं सकती? हजारों अपराध करो वह क्षमा कर देती है। जब किसी बात पर जुट जाय तो संसार की कोई भी शक्ति उसे रोक नहीं सकती।"

यदि हम रानी दुर्गावती के चरित्र पर ध्यान दें तो उक्त विद्वान् का कथन सर्वथा सत्य जान पड़ता है। उसने एक सामान्य स्त्री की स्थिति से अपने को इतना ऊँचा उठाया कि मुगल-साम्राज्य का गुणगान करने वाले इतिहास लेखकों ने भी उसके महत्व को स्वीकार किया। अकबर के मुख्य मन्त्री तथा उस युग के सर्वोच्च विद्वान सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "आईन अकबरी" के लेखक अबुल-फजल ने लिखा है—

"दुर्गावती में अदम्य उत्साह था। उसकी कार्य-क्षमता की बराबरी आसानी से नहीं हो सकती। वह अपने राज्य और प्रजा की रक्षा में सदैव तत्पर रहा करती थी। उसका निशाना कभी नहीं चूकता था। उसकी आदत थी कि जब कहीं कोई शेर दिखाई पड़े तो उसे मारे बिना वह जल तक ग्रहण नहीं करती थी। वह दूरदर्शिता तथा सूझ-बूझ में अच्छे-अच्छे राजनीतिज्ञों को भी मात करती थी।

एक भारतीय नारी के लिये जिसने अकबर के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण किया

और मुगल सेना की दो बार मिट्टी पलीद की हो, अकबर के ही सच्चे सहयोगी और हितचिन्तक अबुलफजल की यह स्वीकारोक्ति साधारण नहीं है। इससे हम विश्वास कर सकते हैं कि रानी दुर्गावती निस्सन्देह उस जमाने के वीरों में अग्रण्य और नारी जाति का मुख उज्ज्वल करने वाली थी। उसने यह सिद्ध कर दिया कि पुरुषों की तुलना में स्त्रियों पर हीनता का जो आक्षेप किया जाता है वह निराधार ही है। स्त्रियाँ भी, अगर उनको उचित अवसर और साधन प्राप्त हो, तो प्रत्येक क्षेत्र में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त कर सकती हैं। समाज और उसके संचालन कर्ताओं का कर्तव्य यही है कि स्त्रियों के प्रगति-पथ में लगे प्रतिबन्धों को दूर कर दें और जन समुदाय को ऐसी शिक्षा दें, जिससे वे समाज सेवा के विविध कार्यों में स्त्रियों के प्रविष्ट होने का विरोध करना छोड़ दें। वर्तमान युग समता का है। जब मजदूर पूँजी पतियों के बराबर अधिकार चाहते हैं तो कोई कारण नहीं कि स्त्रियों को केवल लिंग भेद के आधार पर उच्च और समाजोपयोगी विविध कार्यों के करने से वंचित रखा जाय।

यद्यपि रानी दुर्गावती ने जिस क्षेत्र में अपनी विशेषता प्रकट की थी, सशस्त्र संग्राम में बड़े-बड़े पुरुष सेनापतियों को शस्त्र-संचालन में जिस प्रकार हतप्रभ किया था, अब उसका युग समाप्त हो गया है। अगर हम ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करें तो झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई इस क्षेत्र में अन्तिम थी। अब नारियाँ तो क्या पुरुष सेनापति भी आमने-सामने के युद्ध में ऐसी वीरता नहीं दिखाते हैं। वे अपने कार्यालय में बैठकर ही बड़े-बड़े युद्धों का संचालन करते हैं। पर महान कार्यों के लिए नैतिक साहस, धैर्य और आत्म-त्याग आदि गुणों की अब भी वैसी ही आवश्यकता है, और हम कह सकते हैं कि यदि उपयुक्त वातावरण मिले तो भारतीय नारियाँ अब भी वैसे कार्य करके दिखा सकती हैं जैसे महारानी दुर्गावती, अहिल्या बाई और लक्ष्मी बाई ने किये थे। फिर यह भी नहीं समझ लेना चाहिये कि गत पाँच-चार सौ वर्ष के भीतर ये तीन नारियाँ ही पराक्रमी और देशभक्त हुई थीं। इतिहास में नील देवी, कर्माबाई, वीराबाई, कलावती, रानी भवानी आदि और भी अनेक वीर क्षत्रा-

णियों का वर्णन मिलता है जिन्होंने घोर संग्राम करके शत्रुओं को पराजित किया था। और भी राजघरानों में अनेक वीराङ्गनायें इनकी समता करने वाली मिल सकती थीं, पर पर्दा-प्रथा और स्त्रियों का कार्यक्षेत्र घर के भीतर ही मान लेने की मनोवृत्ति ने उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया। सन्तोष की बात है कि अब समाज ने अपनी इस भूल को समझ लिया है और स्त्रियों को पुरुषों के समान सब प्रकार के अधिकार देने को सिद्धान्त रूप से स्वीकार कर लिया है। इस सम्बन्ध में एक प्रसिद्ध भारतीय विद्वान् ने कुछ समय पूर्व लिखा था—

"यह बात निर्विवाद है कि स्त्रियों को कानून द्वारा किसी भी धन्धे को करने से रोकना अनुचित है। उनको वे सब सुभीते मिलने चाहिये, जिनसे राष्ट्र के बड़े से बड़े पद तक पहुंच सकें, परन्तु नारी के लिए यह कभी उचित न समझा जायगा कि वे अपनी संख्या के अनुपातानुसार पुरुषों के समान नौकरियाँ माँगने लगें। मैं तो यह भविष्यवाणी कर सकता हूँ कि ऐसी परिस्थिति कभी उपस्थित हो ही नहीं सकती चाहे स्त्रियों को कितने ही अधिकार क्यों न मिल जायें उनमें से अधिकांश सदा यही मानेंगी कि 'घर' का बनना या बिगड़ना उन्हीं पर आधार रखता है, और बिना घर के स्त्रियों और पुरुषों के जीवन की कृतकार्यता, असम्भव है। पर जिन स्त्रियों के लिये घर बना सकना या घर पा सकना कठिन हो, वे अवश्य नौकरी या कोई अन्य पेशा करेंगी और प्रत्येक सभ्य जाति का कर्तव्य है कि उनको वे सब सुभीते दिये जायें जिससे वे ऊँचे से ऊंचे सम्मानयुक्त पदों तक पहुँच सकें।"

संतोष की बात है कि यह विचार जो बहुत वर्ष पूर्व प्रकट किया गया था, आज कार्यरूप में परिणित हो रहा है। आज भारत स्त्री-स्वाधीनता की दृष्टि से किसी अन्य देश से पीछे नहीं है और यहाँ की नारियाँ ऊँचे से ऊँचे पदों के उत्तरदायित्व का योग्यतापूर्वक निर्वाह करके महारानी दुर्गावती तथा अहिल्याबाई जैसी महान देवियों का पदानुशरण कर रही हैं।

———

मुद्रक—युग-निर्माण प्रेस, गायत्री तपोभूमि मथुरा।

उत्कृष्ट व्यक्तियों के जीवन-वृत्तान्त जन मानस में मानवीय आदर्शवादिता के लिये आस्था उत्पन्न करते हैं। कहना न होगा कि यह निष्ठा ही लोक-मंगल का मूल आधार है। इसलिये आदर्शवादी व्यक्तियों की जीवन कथाओं की अधिकाधिक जानकारी जनकल्याण की दृष्टि से अतीव उपयोगी एवं आवश्यक मानी जाती है।

युग-निर्माण योजना द्वारा विचार-क्रान्ति के लिये जिस अभिनव साहित्य का निर्माण किया जा रहा है उसमें महामानवों के जीवन चरित्रों की सीरीज को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं में से एक है। ऐसे-ऐसे अनेक जीवन, चरित्र छापे जा रहे हैं। हर महीने उनकी संख्या बढ़ जाती है। उनकी जानकारी पत्र लिख कर प्राप्त की जा सकती है। सभी जीवन चरित्र इसी पुस्तक की भाँति ३२ पृष्ठों में हैं। उनका मूल्य ४० पैसा है।

मानवीय आदर्शों के प्रति आस्था रखने वाले प्रत्येक विचारशील व्यक्ति से आशा की जाती है कि वे इस साहित्य को स्वयं पढ़ें और अपने परिवार तथा साथियों को इसे पढ़ावें, सुनावें।

प्रकाशक—'युग-निर्माण योजना' मथुरा।

मूल्य ४० पैं०

: युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य- संक्षिप्त परिचय :

ज्यादा जानकारी यहाँ से प्राप्त करें :
http://hindi.awgp.org/about_us

- **विचारक्रान्ति अभियान के प्रणेता** : विचारों को परिस्कृत और ऊँचा उथाने मे समर्थ 3000 से भी अधिक पुस्तकों के लेखन के माध्यम से विश्वव्यापी विचार क्रान्ति अभियान की शरुआत की ।
- **वेद, पुराण, उपनिषद के प्रसिद्ध भाष्यकार** : जिन्हों ने चारों वेद, 108 उपनिषद, षड दर्शन, 20 स्मृतियाँ एवं 18 पुराणों का युगानुकूल भाष्य किया, साथ ही 19 वाँ प्रज्ञा पुराण की रचना भी की ।
- **3000 से अधिक पुस्तकों के लेखक** : मनुष्य को देवता समान, घर-परिवार को स्वर्ग, समाज को सभ्य और समग्र विश्वराष्ट्र को श्रेष्ठ बनाने मे समर्थ हजारों पुस्तकें लिखकर समयानुकूल समर्थ मार्गदर्शन प्रदान किया ।
- **युग-निर्माण योजना के सूत्रधार** : जिन्होंने शतसूत्री युग निर्माण योजना बनाकर नये युग की आधार शिला रखी ।
- **वैज्ञानिक-अध्यात्मवाद के प्रणेता** : जिन्हों ने धर्म और विज्ञान के समन्वय की प्रथम प्रयोगशाला 'ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान' स्थापित कर सिद्ध किया कि "धर्म और विज्ञान विरोधी नहीं, पुरक है "।
- **'२१ वीं सदी : उज्जवल भविष्य' के उद्दघोषक** : जिन्हों ने '२१ वीं सदी : उज्जवल भविष्य' का नारा दिया तथा युग विभीषिकाओं से भयग्रस्त मनुष्यता को नये युग के आगमन का संदेश दिया ।
- **स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ सैनानी** : जिन्हों ने महात्मा गाँधी, मदन मोहन मालवीय, गुरुवर रविन्द्रनाथ टैगोर के साथ राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया एवं स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी "श्रीराम मत्त" के रुप में प्रख्यात हुए ।
- **गायत्री के सिद्ध साधक** : जिन्हों ने गायत्री और यज्ञ को रुढियों और पाखण्ड से मुक्त कर जन-जन की उपासना का आधार तथा सद्‌बुद्धि एवं सतकर्म जागरण का माध्यम बनाया ।
- **तपस्वी** : जिन्होंने गायत्री की कठोरतम साधना कर २४-२४ लाख के २४ महापुरश्चरण २४ वर्षो में सम्पन्न किया । प्रकृति प्रकोप को शांत कर अनिष्टों को टाला, सृजन सम्भावनाओं को साकार किया ।
- **अखिल विश्व गायत्री परिवार के जनक** : जिन्हों ने अपने जीवनकाल में ही अपने साथ करोडों लोगों को आत्मियता के सूत्र में बाँधकर विश्व व्यापी 'युग निर्माण परिवार' - 'गायत्री परिवार' का गठन किया ।
- **समाज सुधारक** : जिन्हों ने नारी जागरण, व्यसन मुक्ति, आदर्श विवाह, जाति-पाँति प्रथा तथा परंपरागत रुढियों की समाप्ति हेतु अद्‌भूत प्रयास किए एवं एक आदर्श स्वरुप समाज में प्रस्तुत किया ।
- **ऋषि परम्परा के उद्धारक** : जिन्हों ने इस युग में महान ऋषियों की महान परंपराओं की पुनर्स्थापना की । लुप्तप्राय संस्कार परंपरा को पुनर्जीवित कर जन-जन को अवगत कराया ।
- **अवतारी चेतना** : जिन्होंने "धरती पर स्वर्ग के अवतरण और मनुष्य में देवत्व के जागरण" की अवतारी घोषणा को अपना जीवन लक्ष्य बनाया और चेतना का ऐसा प्रवाह चलाया कि करोंडों व्यक्ति उस ओर चल पड़े ।

गायत्री परिवार जीवन जीने कि कला के, संस्कृति के आदर्श सिद्धांतों के आधार पर परिवार,समाज,राष्ट्र युग निर्माण करने वाले व्यक्तियों का संघ है। **वसुधैवकुटुम्बकम्** की मान्यता के आदर्श का अनुकरण करते हुये हमारी प्राचीन ऋषि परम्परा का विस्तार करने वाला समूह है गायत्री परिवार। एक संत, सुधारक, लेखक, दार्शनिक, आध्यात्मिक मार्गदर्शक और दूरदर्शी युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा स्थापित यह मिशन युग के परिवर्तन के लिए एक जन आंदोलन के रूप में उभरा है।